उपाध्याय क्षमाकल्याणजी और उनका साधु समुदाय

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

भगवान महावीर के शासन की यह एक विशेषता रही है कि मानव प्रकृत्यनुसार साध्वाचार में जब-जब शिथिलता आयी तो उसके परिहार के लिए कई क्रान्तिकारी महापुरुष प्रकट हुए। क्योंकि भ० महावीर ने जैनमुनियों का आचार बड़ा कठिन और निरवद्य रखा था इसलिए उनकी वाणी का जिन्होंने भी ठीक से स्वाध्याय मनन किया उन्हें जैनधर्म का आदर्श सदा यह प्रेरणा देता रहा कि विशुद्ध साध्वाचार पालन करना ही प्रत्येक साधु-साध्वी का कर्त्तव्य है। यदि उसमें कहीं दोष लगता है तो उसका परिमार्जन किया जाना भी अत्यावश्यक है।

खरतरगच्छ अपनी विशुद्ध साध्वाचार की परम्परा के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसे सुविहित विधिमार्ग इस उपनाम से भी उल्लिखित किया जाता रहा है। समय समय पर जब भी शिथिलाचार पनपा तब खरतरगच्छ के आचार्यों और मुनियों ने क्रियोद्धार द्वारा पुनः शुद्ध साध्वाचार प्रतिष्ठित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी वाचक अमृतधर्मगणि ने संवेग भाव से कतिपय साधूचित नियमों को ग्रहण कर आचार-निष्ठा का भव्य उदाहरण उपस्थित किया। ये जिनभक्तिसूरिजी के शिष्य प्रीतिसागर उपाध्याय के शिष्य थे। सं० १८३८ मिती माघसुदि ५ को आपने परिग्रह का सर्वथा त्याग कर दिया था। इन्हीं के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणजी हुए जिनकी परम्परा का साधु समुदाय आज भी सुखसागरजी के संघाड़े के नाम से विद्यमान हैं।

पं० नित्यानंदजी विरचित संस्कृत क्षमाकल्याणचरित के अनुसार क्षमाकल्याणजी का जन्म बीकानेर के समीपवर्त्ती केसरदेसर गाँव के ओसवंशीय मालू गोत्र में सं० १८०१ में हुआ था। आपका जन्म नाम खुशालचन्द्र था। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार सं० १८१५-१६ में श्रीजिनलाभसूरिजी के पास आपने यति-दीक्षा ग्रहण की। आपके धर्म-प्रतिबोधक और गुरु वाचक अमृतधर्मजी थे। विद्यागुरु उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र) थे। संवत् १८२६ से ४० तक आप वाचक अमृतधर्मजी, श्रीजिनलाभसूरिजी और श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के साथ राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छादि में विचरे और तत्रस्थ तीर्थों की यात्रा कर सं० १८४३ में पूर्वदेश की ओर अपने गुरु महाराज के साथ विहार किया। सं० १८४३ का चातुर्मास बालूचर में करके भगवती सूत्रकी वाचना की। पाँचवर्ष तक बंगाल-विहार में विचरण कर आपने कई मंदिर-मूर्त्तियों-पादुकाओं आदि की प्रतिष्ठा की। वहां के श्रावकों की प्रेरणासे हिन्दी-राजस्थानी में कई रचनाएँ भी कीं।

सं० १८५० का चातुर्मास बीकानेर करके सं० १८५१ का जेसलमेर किया और वहीं माघ सुदि ८ को आपके गुरु महाराज का स्वर्गवास हो गया। जेसलमेर में आज भी अमृतधर्म शाला उनकी स्मृति में विद्यमान है। सं० १८५५ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको वाचक पद दिया और दो तीन वर्ष बाद श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया। सं० १८५८-५९ में आप उपाध्याय के रूप में सूरिजी के साथ जेसलमेर थे। सं० १८२६ से लेकर १८७३ तक आप निरन्तर साहित्य निर्माण करते रहे। अजीमंगज, महिमापुर, महाजन टोली, पटना, देवीकोट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, मंडोवर में आपने प्रतिष्ठाएं करवायीं। अनेक श्रावक श्राविकाओं ने आपसे व्रत ग्रहण किया। सभी प्रसिद्ध तीर्थों की आपने यात्राएं कीं। सं० १८६६ में गिडिया राजाराम व संघपति तिलोकचंद लूणिया के विशाल संघ के साथ शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की।

आपने अनेक सुयोग्य शिष्यादि को विद्याध्ययन करवाया। जिनमें से सुमतिवर्द्धन और उमेदचन्द्र की उल्लेखनीय रचनायें प्राप्त हैं। सं० १८६८ में शारीरिक अस्वस्थता के कारण आप किशनगढ़ से बीकानेर आ गये और अन्तिम समय तक वहीं विराजे। सं० १८७३ पोष बदि १४ मंगलवार को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके अग्नि संस्कार स्थान पर रेल दादाजी में चरणपादुका एवं स्तूप प्रतिष्ठित हैं। श्री सीमंधर स्वामीजी के मन्दिर व सुगनजी के उपाश्रय में आपकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। आपकी तरुण और वृद्धावस्था के कई चित्र भी उपलब्ध हैं। आपके अक्षर बड़े सुन्दर थे आपके लिखे हुए पत्र का ब्लाक, आपका चित्र, रचनाओं की सूची और विशेष जीवन परिचय श्री पुण्यस्वर्ण ज्ञानपीठ, जयपुर से प्रकाशित आपके प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक के हिन्दी अनुवाद में प्रकाशित कर चुका हूँ। आपकी कई संस्कृत की रचनाएँ व स्तवनादि प्रकाशित हो चुके हैं। कल्याणविजय, विवेकविजय, विद्यानन्दन, धर्मविशाल आपके शिष्य थे। धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी उनके शिष्य ऋद्धिसागरजी के शिष्य सुखसागरजी हुए। क्षमाकल्याणजी अपने समय के बड़े आगमज्ञ और गीतार्थ पुरुष थे।

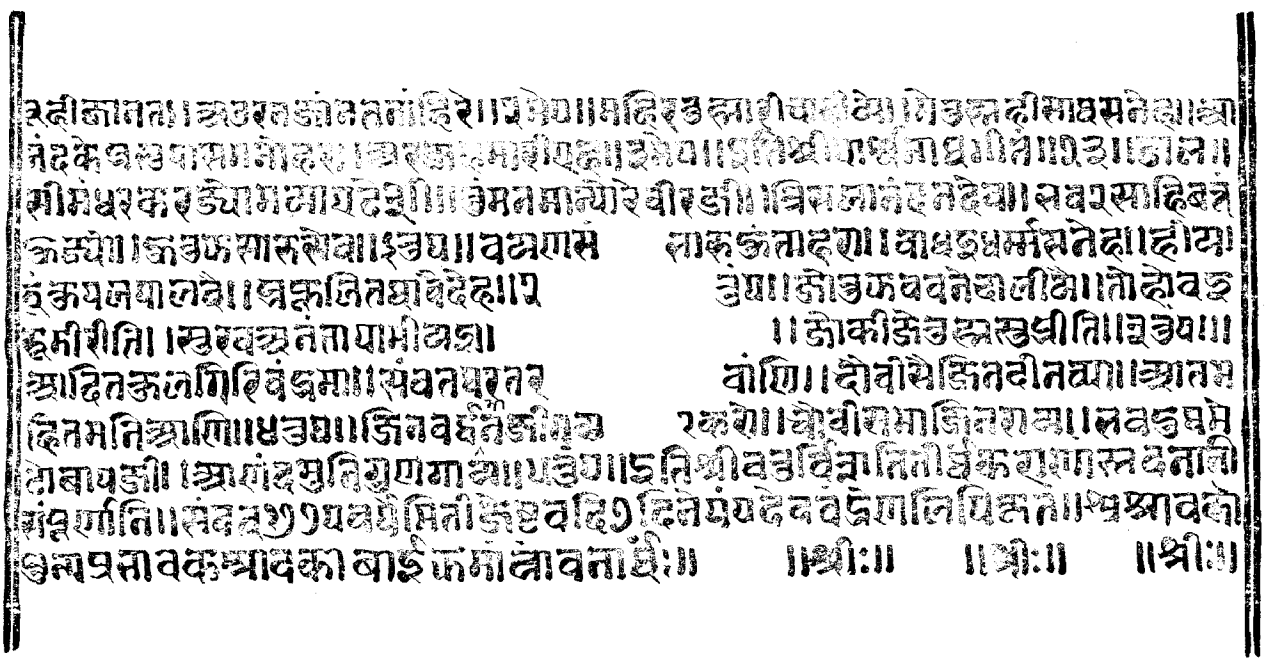

श्री मद् देवचन्द्रजी के हस्ताक्षरों में आनंदवर्द्धन कृत चौवीसी का अन्तिम पत्र (१७७०)

[अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org